International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 12 Issue 1, January-February, 2024, Impact Factor: 8.376

रामचरितमानस में न्यायालयों के न्याय पहलुओं और उनकी प्रक्रिया का अध्ययन करना।

राजेश कुमार अग्रवाल[1], डॉ. हरि विलास सिंह[2]

[1]रिसर्च स्कॉलर, सनराइज यूनिवर्सिटी, अलवर
[2]एसोसिएट प्रोफेसर, सनराइज यूनिवर्सिटी, अलवर राज

सारांश

रामायण को सबसे बड़ा भव्य काव्य माना जाता है और इसका श्रेय ऋषि तुलसीदास को जाता है। इसके वर्तमान स्वरूप में सात पुस्तकें और लगभग 24,000 श्लोक या छंद हैं, हालाँकि अंतिम पुस्तक बाद में लिखी गई एक उपसंहार है, जैसा कि संभवतः मुख्य पुस्तक का अधिकांश भाग था। राम को एक अमर देवता, विष्णु के अवतार के रूप में प्रस्तुत करना, अधिकांशतः इन बाद की पुस्तकों में पाया जाता है। कुल मिलाकर पूरा काव्य वीरतापूर्ण है, और राम और उनकी पत्नी सीता अपनी धार्मिकता और पवित्रता में अलौकिक हैं। भारतीय संस्कृति के लिए वे आदर्श आचरण और आचरण के आदर्शों का प्रतिनिधित्व करते हैं। रामायण राष्ट्र की खोज के क्षेत्र में प्राचीन भारतीय राजनेताओं की जानकारी को प्रदर्शित करता है। अर्थशास्त्र, राजशास्त्र, राजधर्म, नीतिशास्त्र, दंडनीति और राजनीतिशास्त्र (राष्ट्र की खोज) समानार्थी हैं। यह राज्य के सात उपांगों और इसके अलावा राज्य प्रशासन में उनके व्यक्तिगत मानकों के बारे में विचार को कुशलतापूर्वक दर्शाता है। राज्य के ये सभी सात उपांग और उनकी क्षमताएँ, जैसा कि महाकाव्य में दर्शाया गया है, प्राचीन भारत के राजनेताओं द्वारा व्यक्त की गई भावनाओं के अनुरूप हैं।

मुख्य शब्दः राजनेताओं, रामायण, अर्थशास्त्र, राजशास्त्र, राजधर्म, नीतिशास्त्र, दंडनीति

परिचय

रामायण को भारतीय धर्म का प्राण कहा जाता है। भारत की संस्कृति की चेतना श्रीरामचरितमानस के पन्नों पर गोस्वामी तुलसीदासजी ने मर्यादा पुरुषोŸाम आदर्श के प्रतिनिधि भगवान् श्रीराम की कथा के रूप में लिखी है। यह आम जनता की भाषा में लिखा गया ग्रन्थ है जो राष्ट्र की सांस्कृतिक धरोहर है। इसमें सामाजिक वर्जनाओं, सद्गृहस्थ परम्पराओं तथा पिता-पुत्र, भाई-भाई, आदर्श दाम्पत्य, पत्नीव्रत और लोक कल्याण सर्वोपरि है। इसमें मानव मूल्यों का संवहन जैसे धर्म का पालन किया गया है। इस ग्रन्थ ने हमारे पारिवारिक आदर्शों को बनाये रखा है। श्रीरामचरितमानस ऐसा आदर्श ग्रन्थ है जो यह दर्शाता है कि एक साधारण जीवन का आचरण कैसा होना चाहिए? तथा पारिवारिक मूल्यों का वहन किस प्रकार किया जाना चाहिए। इसकी सीख देता है। आज भारत अपनी पहचान को भुला चुका है और अपनी अस्मिता का विस्मरण कर वह भारत से इंडिया के आधुनिक संस्कृति रूपी वस्त्र का चोला धारण कर लिया है। अँगरेज़ तो इस धरा को छोड़ गए परन्तु जाते जाते उन्होंने भारत के जनमानस को पूर्णतः छल दिया। भारत के भोले जनमानस उनके छलावे में सहजता से आ भी गए।

अंग्रेजों ने भारत का नामकरण इंडिया इस आधार पर किया कि इस देश को उन लोगों ने अगस्त के मास में राजनैतिक तौर से स्वाधीनता दी है। इंडिया शब्द का असंक्षिप्त रूप वास्तव में इस प्रकार है-इंडिपेंडेंस इन अगस्त और हम भारतवासियों ने इसी नाम को पूर्ण श्रद्धापूर्वक स्वीकार कर लिया। समयचक्र में यह हम जान ही न पाए कि कब भारत वास्तव में इंडिया में परिवर्तित हो गया है। इस बात का ज्ञान ही नहीं रहा कि कब हम अपनी अखंड भारत की संस्कृति को छोड़कर इंडिया की संस्कृति में ढल गए।

गुरु की महŸाा भारत एक ऐसा देश रहा है जहाँ शताब्दियों से गुरु और गुरुकुल के प्रति आग्रह का भाव रहा है यद्यपि आज गुरु और गुरुकुल की परंपरा का पूरी तरह लोप हो गया है। जनमानस के लिए शिक्षा का आदर्श कहीं हैं तो लोगों के अनुसार उसी गुरुकुल की परंपरा में आज भी विद्यमान है। तुलसीदासजी इसी लोकमानस की परंपरा का सर्वत्र अनुकरण करते हैं।

रामचरितमानस ही नही दूसरे ग्रन्थों में भी यथा अवसर गुरु को स्मरण किया है। उनके अनुसार गुरु मात्र ज्ञान का दाता नहीं बल्कि एक ऐसा महापुरुष है जो उदारता, ज्ञान और अपने शिष्य के प्रति शुभेच्छा के भाव से भरा होता है। वह अपने शिष्य की कमियों को खोज खोज के सामने लाता है। इन कमियों को दूर करने के लिये उसे डांटता फटकारता है किन्तु इस डाँट और फटकार के पीछे

उसका उद्देश्य कभी बुरा नहीं होता। उसका एक मात्र लक्ष्य अपने शिष्य का आंतरिक और मानसिक उत्थान करना ही होता है। हर तरह से उसे समर्थ और सक्षम बनाना है गुरु के इसी असाधारण व्यक्तित्व की तरफ संकेत करते हुए कबीरदासजी ने कहा था-

गुरु कुम्हार शिष्य कुम्भ है गढ़ी-गढ़ी काढ़े खोट
भीतर हाथ सराहि के बाहर मारे चोट- १
यह एक सीमा तक सच्चाई है सद्गुरु का एकमात्र स्वार्थ अपने शिष्य के स्वार्थ की पूर्ति ही होती है। येन-केन प्रकारेण वह अपने शिष्य को उस मुकाम से भी आगे बढ़ाना चाहता है

जिसे शिष्य ने अपनी मंजिल मान रखी है शिष्य का उत्कर्ष गुरु के लिये हर्ष का विषय होता है उसकी निष्ठा व समर्पण स्व के कल्याण के लिये नहीं बल्कि शिष्य को सामर्थ्यवान बनाने के लिये होता है गुरु की यह उदारता गोस्वामी तुलसीदासजी को कृपा सिंधु जैसा प्रतीत होता है।

भारतवर्ष के आदिकाल से पूर्व काल-पुरातन काल के समय से ही सनातन धर्म के मध्य गुरु को त्रिपरम शक्तियों सम्पूर्ण सृष्टि के सृजनकर्ता आदि प्रजापति श्रीब्रह्मा, सकल लोकरक्षक समस्त सृष्टि पालक श्रीविष्णु-श्रीहरि श्री नारायण तथा सम्पूर्ण सृष्टि के लयकर्ता देवों के देव श्रीमहादेव के समकक्ष माना जाता रहा है। इतना ही नहीं सनातन धर्म के अंतर्गत गुरु को जग में सदृश विचरता हुआ पूर्ण परब्रह्म का ही साक्षात् स्वरूप बताया गया है-

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुर साक्षात् परम ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः।।१।।-२
तुलसीदास ने गुरु की महिमा का गायन अपनी रचना रामचरितमानस में सात काण्डों के अंतर्गत अनेक स्थानों अनेक प्रसंगों में विभिन्न रूपों से किया है। रामचरितमानस के बालकाण्ड में तुलसी गुरु वंदना के प्रसंग से ही भारतवर्ष में वर्षों से चली आ रही गुरु परंपरा के सम्मान की प्रक्रिया का सत्य उजागर होता है। यह साथ ही भारतीय जनमानस की सदियों की सांस्कृतिक मानसिकता की रूपरेखा को भी उभारता है जिसके अनुसार सद्गुरु की दी हुई शिक्षा दीक्षा के बिना कोई भी प्राणी जीवन रूपी भवसागर को पार नहीं कर सकता है। तुलसी के गुरु वंदना वर्णन प्रसंग में तुलसी के मन मस्तिष्क में बसे हुए आदर्श गुरु का स्वरुप भी उजागर होता है। ऐसा गुरु जिसके पास इतनी शक्ति है कि जिसके चरणकमलों की रज भी संजीवनी जड़ी-बूटी का सुन्दर चूर्ण है जो सम्पूर्ण भवरोगों के परिवार का नाश करनेवाला है। समस्त समस्याओं का समूल विनाश करनेवाला है। तुलसी के तथाकथित सच्चे गुरु की अन्य कतिपय विशेषताएं इस प्रकार हैं-

एक आदर्श गुरु,
सच्चा गुरु हमारी दृष्टि के दोष का निवारण करता है,
नयन अमिय दृग दोष विभंजन। ३

तथा हमारी दृष्टि दोष का निवारण कर हमें दिव्य दृष्टि प्रदान करता है। इसके साथ एक परम सात्विक गुरु अन्धकार का नाश ही नहीं करता है, वरन वह साधारण मनुष्य के अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश करता है। जिस अन्धकार में ईर्ष्या, दम्भ, कपट, छल-छù तथा अहंकार जैसे मानवीय अवगुण सम्मिलित हैं।

2. अध्ययन के उद्देश्य
1. रामचरितमानस में न्यायालयों के न्याय पहलुओं और उनकी प्रक्रिया का अध्ययन करना।
2. सामान्य धर्म और राज धर्म की वृद्धि और विकास का अध्ययन करना।
3. शोध पद्धति

रामचरितमानस में वर्णित जीवन मूल्यों के आज के समय में प्रासंगिकता को ढूंढकर समस्त भारतीय जनमानस के सामने लाना ही शोधार्थिनी के शोध का क्षेत्र है। रामचरितमानस के जीवन मूल्यों को प्रकाश में लाकर जन जन में नैतिक बोध और विवेक जागरण की मशाल जलाकर आत्मशुद्धि के पथ पर अग्रसर करके आतंरिक स्वच्छता अभियान को संस्थापित करना ही शोधार्थिनी के शोध का क्षेत्र है। रामचरितमानस इस क्षेत्र के लिए सर्वाधिक उपयुक्त धार्मिक ग्रंथ है जो केवल धार्मिक ग्रंथ ही नहीं अपितु ज्ञान का अपूर्व और अनंत गुण सागर है। तुलसीदास ने अपनी इस रचना में कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं छोड़ा जिसका संबंध मानव के जीवन से न हो। व्यक्ति सही अर्थों में तब ही सुखी हो सकता है जब उसका वातावरण उसका परिवेश सुखी और संतुष्ट हो- उसका समाज सुखी हो। सुख की अनिवार्यता में निर्भयता का एक विशिष्ठ स्थान है जब किसी को किसी दूसरे से भय नहीं होता तभी वह सही अर्थों में आतंरिक शांति-आतंरिक सुख का अनुभव कर सकता है। आज के युग में समृद्धि का ध्वज पताका निÜचत रूप से अपना सीना ताने भारत की भूमि और विश्व के वक्षःथल पर खड़ा है किन्तु भय और अनिÜचतता के साम्राज्य ने इस समृद्धि को खोखला बना दिया है। आज हर मानव के मन में एक भय सदैव कुंडली मार कर बैठा रहता है कि उसके जीवन का नवीन क्षण उसके लिए क्या लेकर आएगा? नए पल में उसके साथ क्या घटित हो जाएगा? इत्यादि-यह अनिÜचतता यह भय संसार से विलुप्त हो रहे उन सैद्धांतिक मूल्यों के कारण है जिनको मानव सभ्यता ने स्वयं के पालन और संरक्षण के लिए निर्मित किये थे। हत्याकांडों में बढ़ोÝारी, फरेबी, जालसाजी, नारियों के सतीत्व को मिटाने की तत्परता तथा उनके सतीत्व पर भीषण घात, शासन और प्रशासन

की अनीतियों के ईमारत पर खड़ी राजनीति मानव सभ्यता में विलुप्त हो रहे सैद्धांतिक मूल्यों की वास्तविकता के प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। आज का मनुष्य उन समस्त मूल्यों को तिलांजलि देकर स्वयं को भय और अनिÜचतता के अंधकार में सहर्ष झोंकता चला जा रहा है। भारत की भूमि पुरातन काल से ही देवभूमि की उपाधि से सुसज्जित रही है। यह वह भूमि है जहाँ दैवत्व का सदा वास रहा है। दैविक शक्तियाँ भी जिस धरा पर अवतार धारण कर विविध लीलाएँ करने हेतु तत्पर रहती थीं। आज वह देवत्व से भरी भूमि भी दुर्भाग्यवश इसी भय और अनिÜचतता के चपेट में आ गया है। भारत ऐसा देश है जिसमें केवल दैवी शक्तियों ने ही नहीं अपितु असंख्य ईमानदार महा बाहुओं ने भी समय समय पर जन्म लेकर इस देश की कीर्ति और इसके यश को चार चाँद लगाए हैं- महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी महाराज, खुदीराम बोस, चंद्रशेखर आज़ाद, भगत सिंह आदि अनगिनत नामों में से कुछ नाम जो इस तथ्य की पुष्टि करते हैं वही देश आज पूरी तरह अपने विनाश की कगार पर खड़ी है-ये हम भारतवासियों के लिए चुल्लू भर पानी में डूब मरने की बात है किन्तु वर्तमान समय इसी बात को सत्य प्रमाणित करने को तत्पर हो रहा है।

तुलसीदास ने अपने जिस मुग़ल कालीन भारत की दुर्दशा की झांकी अपनी रचना रामचरितमानस के उŸारकाण्ड के अंतर्गत कलियुग के वर्णन के माध्यम से प्रस्तुत की है,भारत आज उससे भी कहीं अधिक गया-गुज़रा हो गया है। ऐसे में शोधार्थिनी के साथ साथ हर भारतवासी का यह कर्तव्य है कि वह अपने गौरवशाली देश के जीवनमूल्यों की ओर स्वयं को उन्मुख करे जिससे स्वर्ग से भी पावन यह धरा पुनः जगतगुरु की उपाधि इस जगत से प्राप्त कर सके शोधार्थिनी के शोध के क्षेत्र का यही भगीरथ प्रयास है। शोधार्थिनी का प्रयास केवल उसी का नहीं है यह भगीरथ प्रयास तो तुलसीदास के साथ-साथ अन्य राम की कथा का प्रचार प्रसार करने वाले अनगिनत संत कवियों का प्रयास रहा है।

4. परिणाम एवं चर्चा

हिंदू होने के नाते हम कभी नहीं भूलते और पाप पुण्य या न्याय के प्रतीक के रूप में राम, कृष्ण, शिव दुर्गा जैसे कुछ श्रेष्ठ दैवीय प्राणियों की तस्वीर देखते हैं और उन्हें अपने हर काम का अद्वितीय निर्णायक मानते हैं। धर्म भी न्याय का ही एक समानार्थी शब्द है। हिंदू समाज में धर्म को हमेशा से न्याय का प्रतीक माना जाता रहा है और इसके सभी उपदेश या निहितार्थ हमें कानून के प्रदर्शन की ओर ले जाते हैं, चाहे वह वर्तमान समय के अंतर्गत हो या प्राचीन समय के अंतर्गत। रामायण काल से ही धर्म को हमेशा से ही संत और मर्यादापुरुषोत्तम माना जाता रहा है। उन्हें धर्म का समर्थक और प्रसारक भी माना जाता है जो हमेशा से ही व्यक्ति और जीवित समाज के सुधार के लिए काम करता है। इसके अलावा, इस तरह से प्राचीन काल से ही कई समानताएँ देखी गई हैं।

गोस्वामी तुलसीदास मुख्यतः भारत की ऐतिहासिक दृष्टि एवं हिंदी भाषा के इतिहास की साहित्यिक दृष्टि से सर्वमान्य मध्यकाल के अंतर्गत भक्तिकाल के परम वैष्णव भक्त कवि हैं और उनके सम्पूर्ण जीवन का केंद्रबिंदु "रामोपासना" ही रहा- धरम के सेतु जग मंगल के हेतु भूमि।

भार हरिबो को अवतार लियो नर को।
नीति और प्रतीत-प्रीति-पाल चालि प्रभु मान,
लोक-वेद राखिबे को पन रघुबर को।।1

सच्चा भक्त हृदय उसी को समझाना चाहिए जिसके हृदय में भगवद् भक्ति के साथ दूसरों के दुःख को समझने की संवेदना की भी उपस्थिति कायम रहे। सच्चे भक्त हृदय के अंतर की इसी संवेदना की ओर मध्यकाल-भक्तिकाल के प्रसिद्ध संत वैष्णव भक्त श्री नरसिंह मेहता ने समस्त भारतीय जनमानस का ध्यान इंगित करके सच्चे भक्त के अंतर की सच्ची संवेदना को अपनी रची हुई इन पक्तियों से परिभाषित कर दिया- वैष्णव जन तो तैने कहिये जे पीर पराई जानी रे।श्श् अर्थात् सच्चा वैष्णव जन-हरि भक्त वही कहलाने योग्य है जो परायी पीड़ा को जानता है-जिसमें संवेदनशीलता तथा करुणा इन दोनों सद्गुणों का भण्डार भरा हुआ है। परमब्रह्म परमात्मा स्वमेव जब सत्य प्रेम और करुणा का साक्षात मूर्तिमान स्वरूप हैं उनका नाम सुमिरन करनेवालों का हृदय भी संवेदना से हीन नहीं हो सकता था। इसलिए गोस्वामी तुलसीदास जी कभी रामचरितमानस के काकभुशुण्डि-गरुड़ संवाद में अपने तत्कालीन भारतीय समाज में व्याप्त समस्याओं और कठिनाओं का काकभुशुण्डि के माध्यम से सविस्तृत वर्णन किया है। महान वैष्णव भक्त कवि तुलसीदास केवल रामचरितमानस में ही अपने तत्कालीन भारतीय समाज की समस्याओं का चिंतन नहीं किया है अपितु रचना रामचरितमानस के अतिरिक्त अपनी अन्य रचनाओं में भी अपने तत्कालीन भारतीय समाज की समस्याओं का चिंतन मनन और विश्लेषण किया है। रामचरितमानस में कलिकाल के वर्णन में गोस्वामी तुलसीदास ने इन समस्याओं का चित्रण इन शब्दों में किया है- तुलसीदास काकभुशुण्डि के माध्यम से कहते हैं कि उनके जीवनकाल का युग कलियुग था जो समस्त पापों का मूल था। उनके युग के पापों ने सब सात्विक धर्मों को ग्रस लिया, सद्ग्रन्थ रूपी नैतिक विचार लुप्त हो गए थे और दम्भियों ने कल्पित पंथ प्रकट कर लिए थे। लोग मोहवश हो गए थे। जनमानस लोभी होने के कारण अपने शुभकर्मों का त्याग कर रहे थे।

तुलसीदास के समय कई परिवर्तन हो रहे थे। अतएव तुलसीदास उन परिवर्तनों से पूर्णतः सहमत नहीं थे और इसके फलस्वरूप वे कतिपय क्षेत्रों में अंतर्विरोध में फंसे हुए थे। अतएव तुलसीदास कहते हैं वर्णाश्रम धर्म और चार आश्रम उनके समय में अपनी अस्मिता और अपना स्थायी परिचय और महत्व खोते जा रहे थे। तुलसीदास द्वारा इस सत्य का उद्घाटन वर्णाश्रम के लुप्त हो जाने की तथाकथित ट्रेजेडी से त्रस्त उनके मन की पीड़ा की अभिव्यक्ति ही है। तुलसीदास काकभुशुण्डि के माध्यम से कहते हैं कि उनके समय भारतीय जनमानस सन्मार्ग की उपेक्षा कर स्वकृत सुरुचि मार्ग का अनुसरण कर रहे थे। डींग मारने वाले ही पंडित कहे जा रहे थे और मिथ्या आडम्बर करनेवाले दम्भियों को ही संत की उपाधि प्राप्त हो रही थी।

तुलसीदासजी के समय में समाज में सर्वत्र अराजकता फैली हुई थी। इस अराजकता का ही नाम उन्होंने कलियुग दिया है। कलि का सामान्य अर्थ ही है पाप। इस युग की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि लोग आत्मीय सम्बन्धों को स्वार्थ साधन के आधार पर ही निश्चित करते थ्ो।

निम्न से निम्न श्रेणी के व्यक्ति से भी यदि कुछ हित सध सकता था तो इस काल के लोग उसे साधने में बुराई नहीं समझते थे। तुलसीदासजी ने स्पष्ट शब्दों में लिखा है-

अति नीचहुँ सन प्रीति करिय जानी निज परम हित।श्श्2 इसी तथ्य को और स्पष्ट करते हुए उन्होंने आगे लिखा है-
पाट कीट ते होइ तेहि तें पाटम्बर रुचिर कृमि पालहिं सब कोई परम अपावन प्रान सम।श्श्3 अर्थात् रेशम का निर्माण रेशम के कीड़े से होता है और उस रेशम से मूल्यवान रेशमी वस्त्र बनता है। कीड़े का नाम लेते ही चेहरे पर, मन में एक विद्रुपता का भाव अपने आप आ जाता है। उससे दूर जाने, मुक्ति पाने का प्रयास लोग अपने आप करने लगते हैं। लेकिन रेशम के कीड़े के साथ ऐसा नहीं होता। वह लोगों की उपेक्षा का शिकार नहीं होता। उससे भागने या उससे दूर जाने की बात लोग नहीं सोचते। वह लोगों के काम आता है। यत्न से लोग उन्हें पालते हैं क्योंकि उसी से रेशम का वस्त्र प्राप्त होता है जो अपने आप में मूल्यवान है।

तुलसीदास जी के समय जीवन में भोग की प्राथमिकता का आरम्भ हो गया था। लोग शरीर छोड़ना नहीं चाहते थे ताकि इच्छा निरन्तर पूरी होती रहे। शरीर के बिना इच्छा का कोई अर्थ नहीं। अर्थ, धर्म और काम और एक सीमा तक मोक्ष भी इस शरीर को ही प्राप्त होता है। इसीलिए उस काल के लोग देहरहित जीवन के बारे में सोचते तक नहीं थे। तुलसीदास एक ऐसे समर्थ रचनाकार हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं में तत्कालीन समाज और जीवन का विशुद्ध और दारुण चित्रण किया है। राजा और प्रजा, शासक और शाषित दोनों को समान रूप से चित्रित किया है। उनके अनुसार राजा निर्दयी है उसके आस पास फैले हुए दरबारियों का राज समाज भी छल-छद्म से भरा हुआ है। ऐसे माहौल में आम जनता किस स्थिति से जीवनयापन कर रही होगी कल्पना से परे है। कवितावली के उत्तरकाण्ड में इसका एक रूप प्रस्तुत करते हैं-

काल-कराल नृपाल कृपाल न, राज समाज बड़ो ही छली है।4 जीवन के मौलिक अधिकार आवश्यक सुविधाएं जैसे स्वप्न बनकर रह गयी हो। छल-छद्म, कपट का सर्वत्र बोलबाला है। दैन्यता जिन्दगी का हिस्सा बन गयी है। न चाहते हुए भी लोग उन कष्ट और यातनाओं के भोक्ता बन रहे हैं जिनके लिए वे किसी भी तरह योग्य नहीं है। यही कारण है कि तुलसी के काव्य में घोर निराशा का भाव दृष्टिगोचर होता है।

दरिद्रता, अकाल, दुष्काल, दुःख, पाप की महिमा सर्वव्यापक है। समाज और जीवन में अराजकता कुछ इस तरह फैली है कि सभ्य सुसंस्कृत और भले लोग डरे-डरे और सहमे से जी रहे हैं जबकि दुराचार और अनीति पर चल रहे लोग निशंक और निडर बने हुए हैं- दिन दिन दूनो देखि दारिद दुकाल दुःख दूरिद दराज सुख सुकृत सकोच है

मांगे पावत पचारि पात की प्रचंड काल की करालता भले को होत पोच है।श्श्5 तुलसीदास जी एक समर्थ कवि हैं। अपने युग की मानसिकता, लोगों का स्वभाव और आचरण को उन्होंने खूब पहचाना था। वे इस बात से भलीभाँति परिचित थे कि उस युग में अहंकार का ही बोलबाला था। शायद ही कोई हो जिसे अहंकार के सर्प ने न डसा हो। यही अहंकार उनकी दुर्दशा का भी कारण है। यद्यपि त्याग, तप, तपस्या और तीर्थाटन सर्वत्र द ष्टिगोचर है। किन्तु सबके मूल में प्रभु कि प्राप्ति का लक्ष्य नहीं बल्कि अपने अहंकार और धन का प्रदर्शन है। तुलसीदास जी का मानना है कि वास्तविक वैराग्य ज्ञान का कहीं नामोनिशान नहीं है। सब कुछ असत्य सारहीन और झूठ पर आधारित है। निष्कर्ष देते हुए वे कहते हैं कि इस कलियुग में मंगल और सुख का एकमात्र साधन राम नाम रसना निसि बासर राम रटो- न मिटे भवसँकट दुर्घट है तप तीर्थ जन्म अनेक अटो कलि में न बिराग न ज्ञान कहूँ सब लागत फोकट झूठ जतो नट ज्यों जनि पेट कुपेटिक कोटिक चेतक कौतुक ठाट डटो तुलसी जो सदा सुख चाहिए तो रसनो निसि बासर राम रटो।श्श्6 तुलसी के काल में धन का वर्चस्व बढ़ने लगा था। लोग मान, सम्मान रिश्ते नातों को ताक पर रखकर धन की तरफ उन्मुख होने लगे थे। इस क्रम में उस काल के लोगों की जिन्दगी धर्म से बहुत दूर हो गयी थी। दया, मोह, माया, ममता जैसे मानवीय गुणों का लोगों में ह्रास होने लगा था। किसी नट की तरह मन सदैव धन के आसपास ही चंचल रहना चाहता था।

तुलसीदास जी का मानना है कि ऐसी मनःस्थिति में न प्रभु की प्राप्ति सम्भव है न धर्म का पालन। ऐसे समय में उन्हें विश्वास है कि राम ही उनके जीवन में व्यवस्था दे सकेंगे। कवितावली में तुलसीदासजी अपनी जिस दैन्यता, दरिद्रता और लाचारी का चित्र बार बार प्रस्तुत करते हैं। वह उस युग का दर्पण है जिसमें उस युग की लाचारी, दरिद्रता और दैन्यता प्रतिबिंबित हो रही है। तुलसीदासजी की बदहाली सिर्फ उनकी बदहाली नहीं है बल्कि उस काल में जी रहे आम जन की बदहाली है। समाज का एकमात्र लक्ष्य दूसरों का शोषण हो गया है। अपने पेशे में स्वयं को बुरी तरह झोंक देने के बाद भी लोग अपनी आवश्यकताओं को पूरा कर पाने में असमर्थ हैं। इस आर्थिक अव्यवस्था ने उनकी जिंदगी को जंजाल बना कर रख दिया है। किसी भी पेशे में बरक्कत की सम्भावना हो ऐसा उन्हें नहीं लगता। खेतीहर किसान गरीब मजदूर, उद्यमी व्यापारी, अद्धेयता ब्राह्मण या साहसी क्षत्री सभी लोग अपने पेशे से दुखी और परेशान हैं। सभी कभी खुद को कभी उस पेशे को कोसते हैं जिनसे उनका सरोकार है जिस पर उनकी रोजी-रोटी टिकी हुई है। वे कवितावली में स्पष्ट शब्दों में यह उद्घोषित करते हैं कि बदहाली की स्थिति इस मुकाम तक आ पहुँची है कि द्रव्य दक्षिणा तो दूर सिर पर केश भी नहीं है-

चाकरी न आकरी न खेती न बनिज भीक जानत न कूर कछु की सब कबारू है तुलसी की बाजी राखी राम ही के नाम न तु भेंट पितरन को न मुंडू में बारू है।श्श्7 तुलसीदास एक संवेदनशील कवि थे। अपने युग की परेशानी और दुःख को उन्होंने अपने ग्रन्थ में बखूबी चित्रित किया है। किन्तु उनका यह चित्रण अन्य पुरुष में न होकर सर्वदा उत्तम पुरुष में है। तुलसी की यह स्वपीड़ा की अभिव्यक्ति विराट अर्थ में परपीड़ा की अभिव्यक्ति है।

निष्कर्ष

रामचरितमानस के एकाग्र और अंतःस्तल अध्ययन से रामचरितमानस के जीवन मूल्यों की प्रासंगिकता पर शोध करनेवाली शोधार्थी के समक्ष यह सत्य उजागर हुआ है कि रामचरितमानस हिन्दुओं के आस्था का मुख्य केंद्र एक धार्मिक ग्रन्थ के रूप में प्रतिष्ठित तो अवश्य रहा है-कतिपय विद्वानों का इस विषय में यह मत है कि भारत के सनातन वैदिक हिन्दू धर्म के अनुयायियों के मध्य वास्तव में देखा जाए तो भगवान् श्री कृष्ण द्वारा गायी हुई श्रीमद्भगवतगीता की ख्याति और उनकी पूजन योग्यता को स्वीकार करने के पÜचात, उसकी लोकप्रियता में वृद्धि होने के पÜचात धार्मिक ग्रंथों की सर्वमान्यता की सूची में गोस्वामी तुलसीदास विरचित रामचरितमानस का व्दितीय; स्थान है। इतना ही नहीं शोधार्थी इस नतीजे पर पहुंची है कि रामचरितमानस सामाजिक दृष्टि और सांस्कृतिक दृष्टि से परिपूर्ण ज्ञान का दस्तावेज़ है।

रामचरितमानस के गहन अध्ययन से शोधार्थी के समक्ष यह सत्य भी उजागर हुआ कि रामचरितमानस को केवल धार्मिक ग्रन्थ के दृष्टिकोण से ही नहीं अपितु सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से भी देखना सम्भव है। रामचरितमानस को सामान्य दैनिक जीवन के दृष्टिकोण से भी देखा जा सकता है रामचरितमानस को शिक्षा के दृष्टिकोण से भी देखना केवल नामुमकिन ही नहीं है अपितु यह वर्तमान भारत की परम आवश्यकता है। रामचरितमानस में आज के भारत की तमाम समस्याओं का पूर्ण समाधान उपस्थित है अतएव रामचरितमानस का गहन अध्ययन यदि भारत का जन जन करे तो आज हमारी जन्मभूमि- हमारे भारत की भूमि सही अर्थों में जन्मभूमिÜच स्वर्गादपि गरीयसी कहलाने योग्य हो जायेगी। शिक्षा का न ही कोई अंत होता है तथा शिक्षा की न ही कोई सीमा ही होती है। रामचरितमानस में परिवार, प्रशासन, समाज, नागरिक यहां तक कि प्राणी मात्रों के लिए सब के लिए मूल्यों और उनके स्वधर्मों के मूल्यों की शिक्षा का प्रावधान उपस्थित है। तुलसीदास ने सभी के कर्तव्यों का-सभी के स्वधर्मों का लेखा-जोखा रामचरितमानस में विस्तारपूर्वक दिया है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

[1]. (संपादक) एच0के0 दीवान/बेद्दानसुधीर : 21वीं सदी में भारत में भारत के सरोकार, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण, 2013, पृ0 361
[2]. गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2069, दोहा 89-2, लंकाकाण्ड।
[3]. गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2069, दोहा 89-2, लंकाकाण्ड।
[4]. गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2069, दोहा 187, लंकाकाण्ड।
[5]. रामशरण जोशी, 'इक्कीसवीं सदी के संकट', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण 2008
[6]. गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस सुन्दरकाण्ड, दोहा-39/2, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2069
[7]. पवन कुमार वर्मा, चाणक्य का नया घोषणा पत्र : भारत के संकट के समाधान राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण 2013, पृ0 23
[8]. गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस सुन्दरकाण्ड, दोहा-70/3, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2069
[9]. गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, दोहा 172/4
[10]. डॉ0 भगीरथ मिश्र, तुलसी संदर्भ और दृष्टि, हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी प्रथम संस्करण 1962, पृ0 210
[11]. गोस्वामी तुलसीदास, दोहावली दोहा-522, गीताप्रेस, गोरखपुर संवत् 2067
[12]. गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस अरण्यकाण्ड, दोहा-205, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 2069
[13]. डॉ0 हरिश्चन्द्र वर्मा, तुलसी साहित्य के सांस्कृतिक आयाम, हिन्दी साहित्य संस्थान, रोहतक, हरियाणा संस्करण 1995, पृ0 63
[14]. गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस अरण्यकाण्ड, दोहा-45/1, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 2069
[15]. गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस उत्तरकाण्ड, दोहा-224/7, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 2069
[16]. गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस बालकाण्ड, दोहा-17/4, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 2069
[17]. गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस किष्किन्धाकाण्ड, दोहा-8/7, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 2069
[18]. श्री भगवान सिंह, तुलसी और गाँधी, सामयिक प्रकाशन, दिल्ली संस्थान 2015
[19]. गोस्वामी तुलसीदास, श्रीरामचरितमानस उत्तरकाण्ड, दोहा-101/3, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 2069
[20]. राम आहुजा सामाजिक समस्याएँ, रावत प्रकाशन, जयपुर, सं0 2012, पृ0 156
[21]. योगेन्द्र प्रताप सिंह, गोस्वामी तुलसीदास : रचना संदर्भ के विविध आयाम, राका प्रकाशन, इलाहाबाद संस्करण 2003